IJRAR.ORG E-ISSN: 2348-1269, P-ISSN: 2349-5138

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH AND ANALYTICAL REVIEWS (IJRAR) | IJRAR.ORG

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन की कारक के रूप में महिलाओं की भूमिका

सोनम सिंह[1], डॉ. जयसिंह यादव[2]

[1]पी.एच.डी. शोध छात्रा, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

[2]शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

सारांश

यह शोधपत्र प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में स्त्रियों की भूमिका का अध्ययन करता है, विशेषकर उन्हें सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक शक्ति के रूप में देखने की उनकी दृष्टि को आधुनिक नारीवादी दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करता है। प्रेमचंद का लेखन काल वह समय था जब भारत सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गुजर रहा था, और स्त्रियों की स्थिति पर गंभीर विचार आवश्यक था। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में स्त्रियों को केवल परंपरा की संरक्षक या करुणा की पात्रा के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र चेतना और प्रतिरोध की भावना से युक्त नायिकाओं के रूप में चित्रित किया। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गोदान' और 'गबन' जैसे उपन्यासों की स्त्रियाँ न केवल पितृसत्ता से जूझती हैं, बल्कि वर्ग, जाति और सामाजिक रूढ़ियों से भी टकराती हैं। इन पात्रों का संघर्ष कभी स्पष्ट और मुखर होता है, तो कभी मूक लेकिन स्थायी प्रभाव छोड़ने वाला। प्रेमचंद की स्त्रियाँ शिक्षा, आत्मबोध और अनुभव के माध्यम से सशक्त बनती हैं, परंतु उनकी agency कई बार अधूरी रह जाती है। आधुनिक नारीवादी अध्येताओं ने इन्हें 'जेंडर्ड सबऑल्टर्न' के रूप में देखा है, जो अपने अस्तित्व और अधिकारों की तलाश में संघर्षरत हैं। यह शोध निष्कर्ष देता है कि प्रेमचंद का साहित्य स्त्रियों की भूमिका को केवल पारंपरिक सीमाओं में नहीं बाँधता, बल्कि उन्हें सामाजिक चेतना, न्याय और परिवर्तन की सक्रिय वाहक के रूप में स्थापित करता है।

मुख्य शब्द: प्रेमचंद, स्त्री पात्र, सामाजिक परिवर्तन, नारीवाद, पितृसत्ता, महिला एजेंसी, शिक्षा और सशक्तिकरण

1. प्रस्तावना: प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्रियाँ और सामाजिक परिवर्तन

प्रेमचंद हिंदी साहित्य के उन युगप्रवर्तक रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे सामाजिक जागरूकता और सुधार का औज़ार बनाया। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से उस समय की भारतीय समाज की गूढ़ समस्याओं को सामने रखा—विशेषतः स्त्री की स्थिति को। प्रेमचंद के साहित्य में स्त्रियाँ केवल भावनात्मक या सौंदर्यात्मक प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक व्यवस्था की गहराई से टकराती, सोचती, और अपने अस्तित्व को परिभाषित करती महिलाएँ हैं। वे अपने चारों ओर व्याप्त सामाजिक अन्याय, रूढ़ियों और लैंगिक भेदभाव को सहते हुए भी उसे चुनौती देने की क्षमता रखती हैं। उनके उपन्यास 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन' और 'गोदान' में स्त्रियों की भूमिका समय के साथ बदलती दिखाई देती है—जहाँ वे परंपरा की शिकार नहीं बल्कि उससे मुक्ति की तलाश में जुटी नायिकाएँ हैं। जयलक्ष्मी (2016) का विश्लेषण इस बात को बल देता है कि प्रेमचंद ने अपने लेखन में स्त्रियों को सामाजिक बदलाव की एक सशक्त प्रेरक शक्ति के रूप में स्थापित किया। उनके अनुसार, 'सेवासदन' की नायिका सौकन्या जिस प्रकार वेश्यावृत्ति से निकलकर समाजसेवा की ओर अग्रसर होती है, वह प्रेमचंद के नारी विमर्श को एक स्पष्ट सामाजिक एजेंडा प्रदान करती है (जयलक्ष्मी, 2016)।

स्त्रियों को सामाजिक परिवर्तन की धुरी के रूप में चित्रित करने का कार्य प्रेमचंद ने महज़ सहानुभूति के आधार पर नहीं किया, बल्कि उनके पात्रों को यथार्थ के धरातल पर खड़ा किया। प्रेमचंद यह जानते थे कि भारतीय समाज की संरचना केवल पितृसत्तात्मक ही नहीं, बल्कि वर्ग, जाति और नैतिकता के अनेक पहलुओं से बनी है, और स्त्रियाँ इन सभी के बीच संघर्ष करती हैं। एस. के. सिंह (2020) बताते हैं कि प्रेमचंद की रचनाओं में महिला पात्रों की प्रस्तुति एकरूपी नहीं है—वे कभी-कभी सामाजिक मानदंडों का पालन करती हैं, लेकिन कई बार वे उन्हीं मान्यताओं के विरुद्ध जाकर सामाजिक असमानताओं को चुनौती देती हैं। यह द्वैत प्रेमचंद की रचनात्मक दृष्टि को गहराई प्रदान करता है, जहाँ नायिका केवल पीड़िता नहीं, बल्कि विचारशील और संघर्षशील व्यक्ति बनकर उभरती है (सिंह, 2020)। गिरीश पांडे (1986) ने अपने अध्ययन में प्रेमचंद की स्त्री छवियों को उस समय के सामाजिक परिप्रेक्ष्य से जोड़ते हुए कहा है कि प्रेमचंद ने अपनी महिला पात्रों को सिर्फ घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें बाहर की दुनिया से जोड़कर सामाजिक चेतना का वाहक बनाया। पांडे के अनुसार, इन पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने पितृसत्ता को न केवल प्रश्नांकित किया, बल्कि उसे तोड़ने की संभावनाएँ भी प्रस्तुत कीं (पांडे, 1986)। इसी कड़ी में पी. तिवारी (2009) का विश्लेषण भी उल्लेखनीय है। उनके अनुसार, प्रेमचंद की कहानियों में स्त्रियाँ केवल संवेदना जगाने वाले पात्र नहीं हैं, बल्कि वे समाज की नैतिकता को भी दिशा देती हैं। 'बड़े घर की बेटी' और 'पंच परमेश्वर' जैसी कहानियों में स्त्रियाँ सामूहिक विवेक, न्याय और आत्मबल की प्रतीक बनकर सामने आती हैं (तिवारी, 2009)। इस प्रकार, प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्रियों को सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय भूमिका में स्थापित किया—न केवल विचारधारा के स्तर पर, बल्कि व्यवहारिक उदाहरणों के माध्यम से भी।

2. प्रेमचंद के युग में लिंग और समाज का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी की शुरुआत का भारत सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था। औपनिवेशिक शासन, आधुनिक शिक्षा का प्रसार, राष्ट्रवादी आंदोलनों की शुरुआत और सामाजिक सुधारों की लहरों ने पारंपरिक भारतीय समाज की जड़ों को झकझोर दिया। इस परिवर्तनशील परिदृश्य में स्त्रियों की स्थिति विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण बनी रही। परंपरागत रूप से स्त्री को घर की सीमाओं में रहने वाली, त्याग की मूर्ति और पुरुष के अधीन एक 'वस्तु' के रूप में देखा जाता था। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में इन सामाजिक यथार्थों को यथासंभव गहराई से पकड़ा। एस. के. सिंह (2020) के अनुसार, प्रेमचंद के साहित्य में स्त्री पात्रों का चित्रण औपनिवेशिक उत्तर भारत की उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ वे एक ओर सामाजिक मर्यादाओं का पालन करती हैं, वहीं दूसरी ओर वे विरोध और विद्रोह का भी स्वर रचती हैं। इस दोहरी भूमिका ने प्रेमचंद की महिला पात्रों को उस समय के समाज की असल जटिलताओं के केंद्र में ला खड़ा किया (सिंह, 2020)।

प्रेमचंद के लेखन का काल वही समय था जब समाज में महिलाओं की शिक्षा, विधवा विवाह, बाल विवाह और पर्दा प्रथा जैसे मुद्दों पर तीव्र बहसें चल रही थीं। इन बहसों और सुधारवादी आंदोलनों ने साहित्य को प्रभावित किया और प्रेमचंद जैसे लेखकों ने इन सामाजिक विमर्शों को अपने लेखन में स्थान दिया। के. जयलक्ष्मी (2016) लिखती हैं कि प्रेमचंद ने न केवल स्त्रियों की पीड़ा को चित्रित किया, बल्कि उनके अधिकारों और संभावनाओं की भी खोज की। 'सेवासदन' जैसी रचना में उन्होंने स्त्री को सामाजिक बंधनों से मुक्त होकर अपनी नई पहचान गढ़ते हुए दिखाया, जो उस समय के लिए क्रांतिकारी विचार था (जयलक्ष्मी, 2016)। उस समय भारत में उभरते हुए सुधारवादी नेता, जैसे ईश्वरचंद्र विद्यासागर और राजा राममोहन राय, स्त्री शिक्षा और सामाजिक न्याय के समर्थक थे। प्रेमचंद का लेखन इन आंदोलनों से प्रभावित था लेकिन उन्होंने महज़ नारेबाज़ी नहीं की, बल्कि अपने पात्रों को जीवंत और यथार्थ के निकट रखा।

प्रेमचंद की रचनाओं में लिंग और सामाजिक ढाँचे की बहस केवल मध्यवर्ग तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने निम्नवर्गीय और ग्रामीण महिलाओं के अनुभवों को भी प्रमुखता से स्थान दिया। फारूकी (2016) के अनुसार, प्रेमचंद ने संस्कृति, इतिहास और लिंग के अंतर्संबंधों को अपने साहित्य में प्रभावी ढंग से उकेरा, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनका लेखन एक समकालीन दस्तावेज़ की तरह काम करता है (फारूकी, 2016)। सीता गुप्ता (1991) ने प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री पात्रों की प्रस्तुति को सामाजिक दृष्टि से आलोचनात्मक बताते हुए कहा कि लेखक ने नारी की आंतरिक संवेदनाओं, उसकी आर्थिक और मानसिक दशा को बिना किसी अलंकरण के प्रस्तुत किया (गुप्ता, 1991)। वहीं, नलिनी जैन (1986) ने यह तर्क दिया कि प्रेमचंद की स्त्रियाँ सामाजिक ढाँचों को तोड़ने की आकांक्षा तो रखती हैं, किंतु कई बार वे पितृसत्ता के अंतर्गत अपनी स्थिति को भी स्वीकार कर लेती हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की रचनाएँ न तो पूरी तरह विद्रोही थीं और

न ही पूरी तरह रूढ़िवादी (जैन, 1986)। इस द्वैत ने ही प्रेमचंद के साहित्य को अधिक वास्तविक, संतुलित और बहुआयामी बनाया।

3. प्रेमचंद के प्रारंभिक कार्यों में महिलाओं का चित्रण

प्रेमचंद के प्रारंभिक साहित्यिक कार्यों में स्त्री पात्रों का चित्रण एक अत्यंत यथार्थवादी और सामाजिक चेतना से जुड़ा हुआ है, जिसमें वे न केवल घरेलू जीवन की सीमाओं में बंधी हैं, बल्कि धीरे-धीरे उन सीमाओं को तोड़ने की आकांक्षा भी प्रकट करती हैं। इस काल के पात्रों में परंपरा और सामाजिक मर्यादा के प्रति सम्मान तो है, परंतु उनके भीतर विद्रोह की एक अंतर्धारा भी बहती है। प्रारंभिक कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचंद ने स्त्रियों को कई बार विवश, पीड़ित और सामाजिक बंधनों से जकड़ा हुआ चित्रित किया, परन्तु वे सिर्फ करुणा के पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक मूक प्रतिरोध भी हैं। चंद्रा (2009) के अनुसार, प्रेमचंद की आरंभिक रचनाओं में हाशिए पर खड़ी स्त्रियाँ—जैसे गरीब, विधवा, वेश्याएँ—सिर्फ सहानुभूति नहीं पातीं, बल्कि वे सामाजिक चेतना का आईना बनती हैं और अपने सीमित संसाधनों में भी आत्मसम्मान की रक्षा करती हैं (चंद्रा, 2009)। वहीं, गिरीश पांडे (1986) मानते हैं कि प्रेमचंद की स्त्रियाँ पूरी तरह बराबरी की स्थिति में नहीं हैं, परंतु लेखक ने उनकी आंतरिक जटिलताओं, इच्छाओं और संघर्षों को बेहद सजीव रूप में उकेरा है। पांडे के अनुसार, 'सेवासदन' की नायिका को एक नैतिक और सामाजिक द्वंद्व में डालकर प्रेमचंद ने स्त्री-जीवन की गहराइयों को पाठकों के सामने रखा (पांडे, 1986)। सीता गुप्ता (1991) ने प्रेमचंद की कहानियों में स्त्रियों की छवियों को गहराई से विश्लेषित करते हुए कहा कि लेखक ने पारंपरिक महिला छवियों से आगे बढ़कर ऐसी स्त्रियाँ रचीं जो समाज से संवाद करती हैं, चाहे वह सहमति में हो या विरोध में (गुप्ता, 1991)। एस. के. सिंह (2020) के अनुसार, प्रेमचंद की आरंभिक रचनाएँ स्त्रीत्व की द्वंद्वात्मक प्रस्तुति करती हैं—जहाँ स्त्रियाँ कभी सामाजिक मर्यादा के प्रतीक के रूप में दिखती हैं, तो कभी प्रतिरोध के माध्यम के रूप में। यह द्वैत उनके साहित्य को ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से प्रासंगिक बनाता है (सिंह, 2020)। इस प्रकार, प्रेमचंद के प्रारंभिक साहित्य में स्त्रियाँ यथार्थ के धरातल पर खड़ी हैं—न वे पूर्णतः स्वतंत्र हैं, न ही पूरी तरह पराधीन; वे अपने अस्तित्व की तलाश में संघर्षरत मानवीय रूप में चित्रित हुई हैं।

4. स्त्रियाँ: सुधार और प्रतिरोध की प्रतीक

प्रेमचंद के साहित्य में स्त्री केवल परंपरा की वाहिका नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार और प्रतिरोध की प्रतीक बनकर उभरती है। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में स्त्रियों को न केवल उत्पीड़न का शिकार दिखाया, बल्कि उन्हें वह शक्ति भी दी जो समाज की रूढ़ियों और अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं को चुनौती देती है। यह स्त्री पात्र अक्सर घरेलू परिवेश से आती हैं, परंतु उनका संघर्ष केवल घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं रहता। वे सामाजिक असमानताओं, पितृसत्ता और नैतिक नियंत्रण के विरुद्ध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्रोह करती हैं। एस. अग्रवाल (2004) लिखती हैं कि स्त्री प्रतिरोध का स्वर हमेशा मुखर नहीं होता, परंतु वह मौन और स्थायी होता है, जो समय के साथ समाज में परिवर्तन लाता है। प्रेमचंद की नायिकाएँ जैसे 'सौकन्या' ('सेवासदन') या 'निर्मला', इसी प्रकार के मौन प्रतिरोध की मिसालें हैं, जो अपने दुःख के माध्यम से समाज को एक नैतिक आईना दिखाती हैं (अग्रवाल, 2004)।

प्रेमचंद की स्त्रियाँ सुधार की आकांक्षाओं को भी साकार करती हैं। वे केवल समस्याओं की वाहक नहीं, बल्कि समाधान की ओर अग्रसर स्त्रियाँ हैं। के. जयलक्ष्मी (2016) के अनुसार, प्रेमचंद ने स्त्रियों को उस समय के सामाजिक सुधार आंदोलन के मूल में रखा। 'सेवासदन' में वेश्या जीवन से निकलकर समाजसेवा की ओर बढ़ती सौकन्या इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार स्त्रियाँ अपने निजी संघर्षों को सामाजिक सुधार में बदल सकती हैं (जयलक्ष्मी, 2016)। वहीं, एस. के. सिंह (2020) बताते हैं कि प्रेमचंद की नारी पात्रें सामाजिक मान्यताओं का पालन करती हैं, पर समय आने पर वे उनके विरुद्ध खड़ी भी होती हैं। यह द्वंद्व उन्हें सामाजिक बदलाव का सशक्त माध्यम बनाता है (सिंह, 2020)। सीता गुप्ता (1991) ने भी प्रेमचंद की कहानियों में स्त्रियों की सक्रिय भूमिका पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि लेखक ने अपने पात्रों को उस रूप में गढ़ा जहाँ वे व्यवस्था की आलोचक भी हैं और एक नई नैतिकता की रचना करने वाली भी (गुप्ता, 1991)। इस प्रकार, प्रेमचंद की स्त्रियाँ सामाजिक सुधार की संवाहक और प्रतिरोध की आत्मा बनकर उभरती हैं—वे उस यथास्थिति को चुनौती देती हैं जो उन्हें सीमित और निर्बल बनाए रखती है।

5. प्रेमचंद की रचनाओं में शिक्षा, सशक्तिकरण और महिला एजेंसी

प्रेमचंद के साहित्य में महिलाओं की शिक्षा को केवल ज्ञान प्राप्ति के साधन के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, आत्मनिर्भरता और परिवर्तन की कुंजी के रूप में देखा गया है। उन्होंने नारी पात्रों को उस युग के संदर्भ में रखा जहाँ शिक्षा एक विशेषाधिकार थी, विशेषतः महिलाओं के लिए। प्रेमचंद ने यह समझा कि स्त्री की सशक्त भूमिका तभी संभव है जब वह मानसिक और वैचारिक रूप से स्वतंत्र हो। गिरीश पांडे (1986) के अनुसार, प्रेमचंद की नायिकाओं के लिए शिक्षा आत्मगौरव और जागरूकता का मार्ग है, जो उन्हें अपने अस्तित्व और अधिकारों को पहचानने में समर्थ बनाता है। उनके अनुसार, प्रेमचंद की रचनाओं में शिक्षा केवल अक्षरज्ञान नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान, सामाजिक आलोचना और व्यक्तिगत agency (क्रियाशीलता) को विकसित करने की प्रक्रिया है (पांडे, 1986)।

सीता गुप्ता (1991) के विश्लेषण में यह बात सामने आती है कि प्रेमचंद की महिला पात्रें शिक्षा के माध्यम से अपने जीवन की दिशा बदलने का प्रयास करती हैं, लेकिन पितृसत्ता, गरीबी और सामाजिक मान्यताएँ उनके मार्ग में रुकावट बनती हैं। उदाहरण के लिए, 'निर्मला' की नायिका अपने अधिकारों और भावनाओं को समझने लगती है, लेकिन समाज का ढांचा उसके सोचने और निर्णय लेने की क्षमता को बाधित करता है। गुप्ता यह स्पष्ट करती हैं कि प्रेमचंद की कहानियाँ महिलाओं की आकांक्षाओं और समाज की बाधाओं के बीच द्वंद्व को बारीकी से पकड़ती हैं (गुप्ता, 1991)। प्रेमचंद के लिए स्त्री का आत्मबोध केवल एक व्यक्तिगत यात्रा नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति की नींव है, जहाँ एक शिक्षित स्त्री अपनी ही नहीं, दूसरों की ज़िंदगी भी बदलने की क्षमता रखती है।

समकालीन दृष्टिकोण से देखा जाए तो प्रेमचंद की कई स्त्री पात्रें अभी भी "प्रकार" के रूप में चित्रित की जाती हैं, न कि पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में। सौम्या घोष (2022) इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि प्रेमचंद की स्त्रियाँ कई बार सामाजिक प्रतीक बनकर रह जाती हैं और उनकी व्यक्तिकता का विकास अधूरा प्रतीत होता है। वे मानती हैं कि प्रेमचंद ने शिक्षा और agency को महत्वपूर्ण स्थान दिया, लेकिन कई पात्रों में यह प्रक्रिया अधूरी या सीमित दिखाई देती है। उदाहरणतः, 'बड़े घर की बेटी' में स्त्री का त्याग और मर्यादा तो उभरकर आता है, परंतु उसकी आंतरिक सोच, निर्णय लेने की प्रक्रिया, और आत्म-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बहुत सीमित है (घोष, 2022)। इस आलोचना से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की सोच यथार्थपरक और प्रगतिशील होते हुए भी, समय और सामाजिक संरचना की सीमाओं से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सकी।

हालाँकि, जब हम 'सेवासदन' जैसी कृति को देखते हैं, तो प्रेमचंद की स्त्रियाँ अपने परिवेश को न केवल समझती हैं बल्कि उससे बाहर निकलने का प्रयास भी करती हैं। आलेहा हलीम (2025) के अनुसार, 'सेवासदन' की नायिका सौकन्या वेश्या जीवन की विवशता से निकलकर सामाजिक सुधार की दिशा में कदम बढ़ाती है। यह बदलाव उसकी एजेंसी का प्रमाण है, जो यौन शोषण और सामाजिक बहिष्कार से होकर गुजरते हुए आत्मनिर्णय और सामाजिक सेवा में परिवर्तित होती है। हलीम बताती हैं कि प्रेमचंद ने इस पात्र के माध्यम से यह दिखाया कि जब स्त्रियों को शिक्षा, अवसर और सोचने की स्वतंत्रता मिलती है, तो वे समाज के केंद्र में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकती हैं (हलीम, 2025)। इस प्रकार, प्रेमचंद की रचनाओं में महिला एजेंसी एक गतिशील प्रक्रिया है—जो शिक्षा, आत्मबोध और सामाजिक संघर्ष के मेल से आकार लेती है।

6. पितृसत्ता को चुनौती: सामाजिक मानदंडों को पुनर्परिभाषित करती महिलाएँ

प्रेमचंद की महिला पात्रें केवल सामाजिक पीड़ा और शोषण की प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे पितृसत्ता को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनौती देने वाली शक्तिशाली हस्तियाँ भी हैं। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्रियों को उन सामाजिक ढांचों के भीतर रखा जहाँ उनका जीवन पुरुषों द्वारा नियंत्रित था, परंतु वे उसी ढांचे को तोड़ने का साहस भी दिखाती हैं। जे. लाल दावर (1987) के अनुसार, प्रेमचंद की रचनाओं में स्त्रियाँ "नारीत्व" और "नारीवाद" के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं। वे परंपराओं का सम्मान करती हैं, लेकिन जहाँ यह परंपरा अन्यायपूर्ण होती है, वहाँ वे विद्रोह करने से भी नहीं हिचकतीं। 'गोदान' की धनिया और 'निर्मला' की नायिका इसके उदाहरण हैं—ये पात्र सामाजिक सीमाओं को लांघकर अपनी अस्मिता और स्वाभिमान के लिए लड़ती हैं (लाल दावर, 1987)। आधुनिक समाज में विवाह, महिला शिक्षा और आत्मनिर्णय जैसे मुद्दों पर भी समान प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। डोम्माराजु और टैन (2024) ने इंडोनेशिया में विवाह की घटती उम्र को स्त्रियों के बढ़ते आत्मनिर्णय से जोड़ा है, जो यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ अब सामाजिक मानदंडों को आत्मनिर्भर दृष्टिकोण से पुनर्परिभाषित कर रही हैं (डोम्माराजु और टैन, 2024)। प्रेमचंद का साहित्य भी इसी प्रकार के आत्मबल और सामाजिक

पुनर्गठन की ओर संकेत करता है, जहाँ स्त्रियाँ केवल परंपरा की अनुगामी नहीं, बल्कि समाज को नई दिशा देने वाली निर्णयात्मक शक्तियाँ हैं।

7. प्रमुख उपन्यासों में महिला पात्रों का तुलनात्मक विश्लेषण

प्रेमचंद के विभिन्न उपन्यासों में महिला पात्रों की छवियाँ विविध रूपों में प्रस्तुत हुई हैं—कहीं वे कर्तव्यनिष्ठ गृहिणी हैं, तो कहीं वे विद्रोही आत्मा के रूप में सामने आती हैं। यह विविधता प्रेमचंद की नारी दृष्टि की गहराई को दर्शाती है। के. जयलक्ष्मी (2016) बताती हैं कि 'सेवासदन' की सौकन्या एक ऐसी महिला है जो समाज की वर्जनाओं को चुनौती देती है और अंततः सामाजिक सुधार की राह चुनती है (जयलक्ष्मी, 2016)। वहीं 'निर्मला' की नायिका एक त्रासदीपूर्ण विवाह और सामाजिक जकड़नों के बीच आत्मग्लानि और मौन प्रतिरोध का प्रतीक बन जाती है। गिरीश पांडे (1986) के अनुसार, प्रेमचंद की स्त्रियाँ समाज की वास्तविकताओं का दर्पण हैं, जो कभी समझौतावादी होती हैं तो कभी संघर्षशील। वे केवल पुरुषों की पूरक नहीं, बल्कि समाज में स्वतंत्र विचारधारा की प्रतिनिधि भी हैं (पांडे, 1986)। सीता गुप्ता (1991) यह विश्लेषण करती हैं कि प्रेमचंद की महिला पात्रों में वर्ग, शिक्षा और सामाजिक चेतना के आधार पर भिन्नताएँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। एक ओर 'गोदान' की धनिया है जो निर्धनता और शोषण के बावजूद आत्मसम्मान नहीं छोड़ती, वहीं 'गबन' की जैलू की भावुकता और प्रेम में समर्पण उसे एक मानवीय स्तर पर दर्शाती है (गुप्ता, 1991)। टैगोर और प्रेमचंद की रचनाओं की तुलनात्मक चर्चा में यह तथ्य उभरकर आता है कि जहाँ टैगोर की नारी पात्रें अक्सर आत्ममंथन करती हैं और आत्मकल्याण की ओर उन्मुख होती हैं, वहीं प्रेमचंद की स्त्रियाँ सामाजिक यथार्थ की ज़मीन पर संघर्ष करती हैं। प्रेमचंद के पात्र कहीं अधिक धरातलीय हैं—वे मिथकीय नहीं, बल्कि आम भारतीय महिला की छवि को प्रतिबिंबित करती हैं। इस तुलना से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की महिला पात्रें न केवल अपने संदर्भ में जीवंत हैं, बल्कि वे हिंदी साहित्य में नारी विमर्श के स्थायी आधारस्तंभ के रूप में स्थापित होती हैं।

8. स्त्री संघर्षों में वर्ग, जाति और लिंग का अंतर्संबंध

प्रेमचंद का साहित्य भारतीय समाज की बहुस्तरीय जटिलताओं को अभिव्यक्त करता है, जिसमें वर्ग, जाति और लिंग की भूमिकाएँ गहराई से जुड़ी हुई हैं। विशेष रूप से उनकी कहानियों और उपन्यासों में स्त्री पात्रों के संघर्ष को केवल लैंगिक शोषण तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उनके आर्थिक और जातिगत संदर्भों को भी रेखांकित किया गया है। कुमार और म्हसाडे (2025) के अनुसार, 'कफ़न' और 'बेटों वाली विधवा' जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने यह दर्शाया कि किस प्रकार स्त्री एक साथ 'दलित', 'गरीब' और 'महिला' होने के कारण तीनहरे शोषण का शिकार होती है। इन कहानियों में स्त्री पात्र सामाजिक करुणा की प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे पितृसत्ता, वर्गीय असमानता और जातिगत भेदभाव के बीच संघर्षरत आत्मा हैं (कुमार और म्हसाडे, 2025)। इन रचनाओं में प्रेमचंद ने उस स्त्री को चित्रित किया है जो सामाजिक न्याय की हकदार तो है, लेकिन संरचनात्मक अन्याय उसे अपने अधिकारों तक पहुँचने ही नहीं देता।

प्रेमचंद का प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' इस अंतर्संबंध को और अधिक स्पष्टता से दर्शाता है। ओबेसेकेरे (1986) का मानना है कि 'गोदान' की धनिया एक ऐसी महिला है जो सामाजिक अन्याय, आर्थिक तंगी और जातीय उत्पीड़न के बीच अपने स्वाभिमान और परिवार की रक्षा करती है। धनिया का संघर्ष न केवल एक स्त्री का संघर्ष है, बल्कि वह एक दलित किसान की पत्नी के रूप में वर्ग और जाति की परतों से भी लड़ती है। वह समाज के शोषणकारी ढाँचे का प्रतिरोध करती है, चाहे वह ज़मींदारी व्यवस्था हो, पुरुषों का प्रभुत्व हो या सामाजिक रूढ़ियाँ (ओबेसेकेरे, 1986)। इस पात्र के माध्यम से प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब तक वर्ग और जाति के आधार पर समाज का विभाजन होता रहेगा, तब तक स्त्री की मुक्ति अधूरी ही रहेगी। इसी संघर्ष में धनिया जैसे पात्र न्याय, गरिमा और आत्मबल के प्रतीक बनकर उभरते हैं।

उदय कांत कर्ण और शबी हैदर ने अपने शोध में प्रेमचंद की रचनाओं को "हाशिए के जीवन का आख्यान" बताया है। उनका विश्लेषण यह रेखांकित करता है कि प्रेमचंद की स्त्रियाँ समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ी होकर भी गरिमा की लड़ाई लड़ती हैं—वे नायक नहीं हैं, परंतु उनके भीतर नायिकत्व की संपूर्ण संभावनाएँ हैं (कर्ण और हैदर)। वहीं, कोशल और सिंह (2025) ने प्रेमचंद और पॉल बीटी की रचनाओं की तुलना करते हुए यह स्पष्ट किया है कि प्रेमचंद की स्त्रियाँ एक ओर सामाजिक व्यवस्था का शिकार हैं, तो दूसरी ओर वे उस व्यवस्था को बदलने की जिजीविषा भी रखती हैं। वे हाशिए पर रहते हुए भी अपने अस्तित्व को मिटने नहीं देतीं (कोशल और सिंह, 2025)। इन सभी अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि

प्रेमचंद ने स्त्रियों के संघर्ष को केवल लिंग आधारित नहीं, बल्कि वर्ग और जाति की गहराई से जोड़कर प्रस्तुत किया—जिससे उनका साहित्य समकालीन सामाजिक विमर्श में आज भी अत्यंत प्रासंगिक बना हुआ है।

9. प्रेमचंद की नायिकाओं का आधुनिक नारीवादी मूल्यांकन

प्रेमचंद की स्त्री पात्रों का मूल्यांकन यदि आधुनिक नारीवादी दृष्टिकोण से किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि वे पूरी तरह पारंपरिक छवियों में नहीं बंधी रहीं, परंतु पूरी तरह नारीवाद की स्वतंत्रता की ओर भी नहीं बढ़ पाईं। गिरीश पांडे (1986) का मानना है कि प्रेमचंद ने स्त्रियों को "लगभग बराबरी" की स्थिति में रखा—जहाँ वे मानसिक, नैतिक और सामाजिक स्तर पर पुरुषों के समकक्ष हैं, लेकिन कई बार वे सामाजिक बाधाओं के कारण निर्णय लेने और विरोध करने की क्षमता से वंचित रह जाती हैं। पांडे यह भी इंगित करते हैं कि प्रेमचंद की कुछ नायिकाएँ, जैसे 'निर्मला' या 'जैलो', पितृसत्तात्मक समाज से टकराती तो हैं, लेकिन उनका विद्रोह सीमित और अंततः त्रासद होता है (पांडे, 1986)। यह द्वंद्व प्रेमचंद की नायिकाओं को आज के नारीवादी विमर्श के लिए जटिल और बहुआयामी बनाता है—वे पूर्णतः "मुक्त स्त्री" नहीं हैं, परंतु उनकी चेतना स्वतंत्रता की ओर संकेत करती है।

समकालीन नारीवादी अध्येताओं ने प्रेमचंद की स्त्रियों को "जेंडर्ड सबऑल्टर्न" (लिंग आधारित निम्नवर्गीय) के रूप में देखा है, जो बोलना चाहती हैं, पर उन्हें बोलने नहीं दिया जाता। सुष्मिता मिश्रा (2012) के अनुसार, 'प्रतिज्ञा' की नायिका एक तरफ अपने पति के सुधारात्मक कार्यों की सहभागी है, लेकिन दूसरी ओर वह स्वयं निर्णय लेने या असहमति जताने में असहाय प्रतीत होती है। मिश्रा इस पात्र को 'दबे हुए स्वर की प्रतीक' मानती हैं, जो प्रेमचंद की सीमाओं को उजागर करती है (मिश्रा, 2012)। इसके विपरीत, स्नेहा रॉय (2016) प्रेमचंद की कहानियों में उस 'नई भारतीय स्त्री' की खोज करती हैं जो उपनिवेशकालीन नैतिकता और पश्चिमी प्रभावों के बीच एक स्वतंत्र स्त्री छवि गढ़ती है। उनके अनुसार, प्रेमचंद की नायिकाएँ 'मेम' नहीं हैं—अर्थात वे औपनिवेशिक आधुनिकता की नकल नहीं करतीं—बल्कि एक भारतीय संदर्भ में स्वाभाविक रूप से आधुनिकता की ओर बढ़ती हैं (रॉय, 2016)। इस दृष्टिकोण से प्रेमचंद की स्त्रियाँ आधुनिक नारीवादी आलोचना के लिए एक ऐसी आधारभूमि बनाती हैं, जहाँ वे न तो पूरी तरह पारंपरिक हैं, न ही पूर्णतः आधुनिक, बल्कि संक्रमणशील, जटिल और वैचारिक संघर्ष से गुजरती हुई दिखाई देती हैं।

10. निष्कर्ष

प्रेमचंद का साहित्य नारी जीवन की उन जटिलताओं को उजागर करता है, जो समाज में परंपरा, जाति, वर्ग और लिंग के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न करती हैं। उन्होंने नारी को केवल करुणा की पात्रा नहीं, बल्कि चेतना और प्रतिरोध की शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। 'सेवासदन' की सौकन्या हो या 'गोदान' की धनिया—प्रेमचंद की नायिकाएँ आत्मबोध से गुज़रती हैं और अपने निजी संघर्षों को सामाजिक चेतना में परिवर्तित करती हैं। शिक्षा, स्वाभिमान और नैतिक अधिकार जैसे विषयों पर लेखक ने स्त्रियों की आवाज़ को केंद्र में रखा। उनके द्वारा चित्रित स्त्रियाँ समाज के यथास्थितिवादी ढाँचे से टकराती हैं, और उसमें बदलाव की संभावना पैदा करती हैं। हालाँकि यह संघर्ष कई बार अधूरा रहता है, फिर भी वह संघर्ष स्वयं में एक सामाजिक हस्तक्षेप बन जाता है। प्रेमचंद की रचनाओं की यह विशेषता उन्हें मात्र साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि सामाजिक दस्तावेज़ बना देती है।

समकालीन नारीवादी अध्ययन यह इंगित करते हैं कि प्रेमचंद की स्त्रियाँ कई बार "प्रकार" बनकर रह जाती हैं—अर्थात् वे एक विचार या प्रतीक के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में नहीं। इसके बावजूद, उनके पात्रों में जो चेतना, द्वंद्व और प्रतिरोध की प्रक्रिया है, वह उन्हें साहित्यिक नायिकाओं से ऊपर उठाकर सामाजिक विचार की वाहिका बनाती है। उनके साहित्य में स्त्री केवल घर की चारदीवारी में बंधी हुई नहीं है, बल्कि वह समाज के केंद्र में खड़ी होकर प्रश्न पूछती है, निर्णय लेती है और बदलाव की राह तय करती है। प्रेमचंद की यह दृष्टि आज भी प्रासंगिक है क्योंकि समाज में पितृसत्ता, वर्गीय असमानता और लिंग आधारित भेदभाव आज भी मौजूद हैं। उनके पात्र इस बात की प्रेरणा देते हैं कि स्त्री केवल व्यवस्था की शिकार नहीं, बल्कि व्यवस्था को पुनः परिभाषित करने वाली चेतन शक्ति भी हो सकती है। इस प्रकार, प्रेमचंद की नायिकाएँ हिंदी साहित्य में नारी विमर्श की नींव रखती हैं और आज भी सामाजिक विमर्श का अविभाज्य हिस्सा बनी हुई हैं।

संदर्भ सूची

1. जयलक्ष्मी, के. (2016) सोशल रिफॉर्मर प्रेमचंद – ए रिव्यू। जर्नल ऑफ लिटरेचर, लैंग्वेजेस एंड लिंग्विस्टिक्स, 20, 44-46।
2. सिंह, एस. के. (2020) प्रेमचंद्स शिफ्टिंग पोट्रेयल्स ऑफ वूमनहुड इन कोलोनियल नॉर्थ इंडिया: बिटवीन कंफॉर्मिटी एंड रेज़िस्टेंस। कॉन्ट्रिब्यूशंस टू इंडियन सोशियोलॉजी, 54(3), 414-439।
3. पांडे, जी. (1986) हाउ इक्कल?: वीमेन इन प्रेमचंद्स राइटिंग्स। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2183-2187।
4. तिवारी, पी. (जनवरी, 2009) जेंडर एंड वीमेन इन प्रेमचंद्स शॉर्ट स्टोरीज़। प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (खंड 70, पृ. 673-679) इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस।
5. फारूकी, बी. (2016) कल्चर, जेंडर, हिस्ट्री। प्रेमचंद इन वर्ल्ड लैंग्वेजेस: ट्रांसलेशन, रिसेप्शन एंड सिनेमैटिक रिप्रेजेंटेशंस, पृ. 175।
6. गुप्ता, सी. (1991) पोट्रेयल ऑफ वीमेन इन प्रेमचंद्स स्टोरीज़: ए क्रिटीक। सोशल साइंटिस्ट, पृ. 88-113।
7. जैन, एन. (1986) वीमेन इन प्रेमचंद्स राइटिंग। जर्नल ऑफ साउथ एशियन लिटरेचर, 21(2), 40-44।
8. चंद्रा, एस. (2009) पोट्रेयल ऑफ द मार्जिनलाइज़्ड इन प्रेमचंद्स राइटिंग्स (स्नातकोत्तर शोधप्रबंध, माइका (मुद्रा इंस्टिट्यूट ऑफ कम्युनिकेशन्स, अहमदाबाद))।
9. अग्रवाल, एस. (2004) वीमेन'स रेज़िस्टेंस – ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर। सोशल चेंज, 34(3), 16-33।
10. घोष, एस. (2022) वीमेन इन प्रेमचंद्स स्टोरीज़ आर टाइप्स, नॉट इंडिविजुअल्स: ए कंटेम्पररी स्टडी ऑफ सेलेक्ट शॉर्ट स्टोरीज़ ऑफ मुंशी प्रेमचंद। रिराइटिंग रेजिस्टेंस: कास्ट एंड जेंडर इन इंडियन लिटरेचर, पृ. 23।
11. हलीम, ए. (2025) रिविज़िटिंग आइडेंटिटी एंड एजेंसी ऑफ प्रॉस्टिट्यूट्स: एन एनालिटिकल स्टडी ऑफ प्रेमचंद'स 'सेवासदन'। क्रिएटिव फ्लाइट, 6(1), पृ. 192।
12. लाल दावर, जे. (1987) फेमिनिज़्म एंड फेमिनिटी: वीमेन इन प्रेमचंद्स फिक्शन। स्टडीज़ इन हिस्ट्री, 3(1), 121-136।
13. डोम्माराजु, पी., और टैन, जे. (2024) गोइंग अगेंस्ट ग्लोबल मैरिज ट्रेंड्स: द डिक्लाइनिंग एज ऐट फर्स्ट मैरिज इन इंडोनेशिया। एशियन पॉप्युलेशन स्टडीज़, 20(2), 144-164।
14. टैगोर, र., और प्रेमचंद, म. ए कम्पैरिटिव स्टडी ऑफ द वैरियस इंफ्लुएंसेस ऑन द राइटिंग्स ऑफ।
15. कुमार, जे., और म्हसाडे, आर. एस. (2025) द 'एंजेंडर्ड' क्लास: इंटरसेक्शनैलिटी ऑफ जेंडर, क्लास एंड कास्ट इन मुंशी प्रेमचंद्स 'कफन' एंड 'बेटों वाली विधवा'। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंग्लिश लिटरेचर एंड सोशल साइंसेस, 10(4), 621443।
16. ओबेसेकेरे, आर. (1986) वीमेन'स राइट्स एंड रोल्स इन प्रेमचंद्स 'गोदान'। जर्नल ऑफ साउथ एशियन लिटरेचर, 21(2), 57-64।
17. कर्ण, यू. के., और हैदर, एस. आर. स्ट्रगल्स ऑफ द मार्जिनलाइज़्ड: ए स्टडी ऑफ ह्यूमन डिग्निटी इन प्रेमचंद'स फिक्शन।
18. कोशल, पी., और सिंह, एस. (2025) एक्सप्लोरिंग रेजिस्टेंस अगेंस्ट सोशियो-पॉलिटिकल क्राइसिस: ए कम्पैरिटिव पर्सपेक्टिव ऑन मुंशी प्रेमचंद एंड पॉल बीटी। कुएस्टियोनेस दे फिजिओतेरापिया, 54(3), 3643-3670।
19. मिश्रा, एस. (2012) रिप्रेजेंटेशन ऑफ जेंडर्ड सबऑल्टर्न इन मुंशी प्रेमचंद'स 'प्रतिज्ञा' (डॉक्टोरल शोधप्रबंध, अंग्रेज़ी विभाग)।
20. रॉय, एस. (2016) पॉलिटिक्स ऑफ स्कल्प्टिंग द 'न्यू' इंडियन वुमन इन प्रेमचंद्स स्टोरीज़: एवरीथिंग द मेम इज़ नॉट। साउथ एशिया रिसर्च, 36(2), 229-240।